ज्ञानविविधा
रचना, आलोचना और शोध की त्रैमासिक पत्रिका

Online ISSN : 3048-4537
April-June, 2024 : 1(3)22-27
©2024 Gyanvividha
www.gyanvividha.com

डॉ.दिवाकर चौधरी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
श्री राधाकृष्ण गोयनका महाविद्यालय,
सीतामढ़ी, बिहार

Corresponding Author :
डॉ.दिवाकर चौधरी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
श्री राधाकृष्ण गोयनका महाविद्यालय,
सीतामढ़ी, बिहार

नागार्जुन की काव्यभाषा

भाषा अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है। इसलिए जिसकी भाषा जितनी समर्थ और सशक्त होगी उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही प्रभावी होगी। साहित्य ही नहीं जीवन के किसी भी क्षेत्र में इसके महत्व का निदर्शन किया जा सकता है। भाषा अभ्यास और प्रयोग से सिद्ध होती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कुछ साहित्यकार अपने भाषागत वैविध्य के कारण विशेष स्थान रखते हैं। हिंदी के उन्हीं लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकारों में से एक नाम है- वैद्यनाथ मिश्र, जिन्होंने मैथिली में 'यात्री' और हिंदी में 'नागार्जुन' नाम से कालजयी रचनाएँ की हैं। यों तो इन्हें मुख्यतः प्रगतिवादी और मार्क्सवाद का समर्थक माना जाता है लेकिन, इनके रचनागत वैविध्य के कारण सम्पूर्ण आधुनिक हिन्दी साहित्य इनके बिना अधूरा लगता है। चाहे बात प्रयोग की हो, प्रगतिवाद की हो, भाषा की हो, यथार्थ की हो, विषय- विविधता की हो- नागार्जुन सर्वत्र ही अपनी विशेष भंगिमा के लिए जाने जाते हैं।

नागार्जुन (30 जून 1911 ई.- 5 नवम्बर 1998 ई.) हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील काव्यधारा के सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध हस्ताक्षरों में से एक हैं। मैथिल कोकिल विद्यापति के पश्चात् मिथिलांचल के सबसे प्रसिद्ध और प्रमुख साहित्यकार और बीसवीं शताब्दी के कालजयी रचनाकार हैं- नागार्जुन। साहित्यकार के रूप में नागार्जुन का काव्यफलक बहुत विस्तृत है। वे अनेक भाषाओँ के जानकार और विद्वान् थे। उन्होंने मुख्यतः चार भाषाओँ-हिन्दी, संस्कृत,मैथिली और बांग्ला में काव्यरचना की है। उनका अधिकांश जीवन साहित्यसाधना, स्वाध्याय और भ्रमण में बीता। प्रखर पांडित्य की सिद्धि के बावजूद उनका सम्पूर्ण साहित्य लोक और जीवन से सरल-सहज संवाद करता दिखता है। उनका व्यक्तिगत जीवन सादगी और संघर्षों की यात्रा रही है, यही सत्य और संघर्ष समर्थ भाषा के माध्यम से उनके साहित्य में अभिव्यक्त है। वे जनकवि थे और इसीलिए वे अपनी रचनाओं के माध्यम से लोक की भाषा में संवाद करना चाहते हैं और इसीलिए भी तथाकथित साहित्य और व्यक्तिगत जीवन के अभिजात्य से निश्चित दूरी बनाए रखते हैं।

नागार्जुन का लेखन 1930 ई. के आस-पास/पश्चात् प्रारंभ माना जाता है। हिन्दी के अलावा संस्कृत,बांग्ला और मैथिली की भी कई रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं और मैथिली रचना-'पत्रहीन नग्न गाछ'(1967 ई.), के लिए नागार्जुन को साहित्य अकादमी पुरस्कार (1969 ई.) भी प्राप्त है। हिन्दी में उनकी प्रारंभिक और प्रसिद्ध रचना 'युगधारा'(1953) है। इसके अलावा उनकी हिन्दी की कुछ प्रमुख और प्रसिद्ध काव्य-रचनाएँ/संग्रह हैं- 'प्रेत का बयान'(1957 ई.), 'सतरंगे पंखों वाली'(1959 ई.), 'प्यासी पथराई आँखें'(1962 ई.), 'भस्मांकुर'(खंडकाव्य-1973 ई.), 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने'(1980 ई.), 'हजार-हजार बाँहों वाली'(1981 ई.), 'पुरानी जूतियों का कोरस'(1983 ई.), 'रत्नगर्भ'(1984 ई.), 'ऐसे भी हम क्या,ऐसे भी तुम क्या'(1985 ई.), 'ऐसा क्या कह दिया हमने'(1986 ई.) इत्यादि।

काव्यभाषा के सन्दर्भ में नागार्जुन का कथन है कि "भाषा बहुत धीरे-धीरे आकार ग्रहण करती है और विकसित होती है। हर भाषा का अपना एक अलग रूप, एक अलग जादू होता है। विषय के अनुसार भाषा अपना रूप बदल लेती है। हमारे सामाजिक संघर्षों में भाषा की भूमिका नींव की तरह है। लेखक भाषा का प्रवर्तक और संरक्षक माना जाता है। शब्द कहाँ जाकर चोट करते हैं, यह जानना कठिन है। भाषा गहरी और संप्रेषणीय होने के साथ-साथ सजग होनी चाहिए। सम्प्रेषणीयता के अभाव में भाषा निर्जीव हो जाती है। समय के प्रति चौकस रहते हुए जीवन के प्रति सर्वांग संपन्न दृष्टि जरूरी है। पाठक की, आम जनता की एक भाषा होती है। उससे एकदम दूर न हो पर उसका विकास जरूरी है। कविता का अर्थ सपाटबयानी भी नहीं हो सकता। कलात्मक प्रयोग भी एक सीमा तक हो। भाषा में सौंदर्य और व्यंजना तो होनी ही चाहिए।"[1]

नागार्जुन ने काव्य के भाषिक संप्रेषण के सन्दर्भ अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि-"भाषिक संरचना तो पाठक को समझनी ही होगी। सम्प्रेषणधर्मी का अर्थ व्यंजना या लक्षणा से विहीन कविता नहीं होती। आपको यदि उनके बीच पहुँचना है तो छंद, तुकबंदी और लय जरूरी है। उनके बीच जाकर और गाकर सुनाने की क्षमता और साहस होना चाहिए। जनता मेरी भी सभी रचनाओं को कहाँ पसंद करती है। जनता हमारे यहाँ इतनी शिक्षित नहीं है कि वह कालिदास के मेघदूत को समझ सके। यह कवि का काम है कि वह अपने को सम्प्रेष्य बनाए। उनके बारे में उनकी ही भाषा में लिखना होगा। कविता अधिक लंबी न हो और करंट टॉपिक पर होनी चाहिए। गहरी अर्थवत्ता के साथ-साथ कविता सहज और सरल होगी तभी जनसमूह को तरंगित करेगी।"[2]

भाषा पर नागार्जुन का गजब अधिकार रहा है. देसी बोली के ठेठ बोलचाल के शब्दों से लेकर संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय पदावली तक और उर्दू-फारसी से लेकर अंग्रेजी तक इनका सहज अधिकार दृष्टिगत होता है। उन्होंने हिन्दी में जिस भाषिक पकड़ के साथ रचना की है उसी अधिकार से मैथिली,बंगला और संस्कृत भाषा में भी रचना की है। इन भाषाओं के अलावा नागार्जुन को पालि, प्राकृत, उर्दू, पंजाबी, गुजराती और उड़िया आदि कई भाषाओँ की जानकारी भी थी, जिस कारण इनके साहित्य और कविकर्म में इन सभी भाषाओं की विविधता एवं विशिष्टता दृष्टिगोचर होती है। काव्य की भाषा- प्रसंग, पात्र और वातावरणानुकूल होनी चाहिए तभी वह काव्य श्रेष्ठ हो सकता है। इन सभी कसौटियों पर नागार्जुन की काव्य भाषा समर्थ और अनुकूल दिखती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखा है कि- "जब की प्रत्येक देश का साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।"[3] तब यह आवश्यक है की वहां का साहित्य जनता की भाषा में लिखी जाए और जनता का साहित्य भारत की बहुसंख्यक, श्रमिक किसान की भाषा में लिखा जाना अपेक्षित है। भारतीय जन सामान्य की भाषा हिन्दी है। जन सामान्य की आशा, आकांक्षा, दुःख-सुख को अभिव्यक्ति देने वाला साहित्य, जनता का साहित्य कहलाता है और वह अपने जातीय स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। नागार्जुन के सम्पूर्ण काव्य-यात्रा पर आचार्य शुक्ल के इस कथन की सत्यता का प्रमाण सहज ही देखने को मिलता है, जहाँ जनता की विभिन्न चित्तवृत्ति को प्रतिबिंबित करती, विभिन्न परिप्रेक्ष्य के अनुसार इनकी भाषा की बनावट, बुनावट और अभिव्यक्ति सतत बदलती रही है। इनकी रचना में प्रयुक्त यही भाषिक विशेषता इन्हें औरों से सहज ही जनता से जोड़ती है और प्रखर जनकवि बनाती है।

अपनी काव्यभाषा के सन्दर्भ में नागार्जुन ने स्वयं लिखा है- ''भाषा की तराश या बुनावट के लिए इलाहाबाद की भाषा को हम प्रमाण मानते हैं। घुमंतू जीवन रहा, तो जगह-जगह के मुहावरे भी लिए हैं। जो मजदूरों को सुनानी है, उसमें शब्दों की कसावट को ढिला कर दिया है।''[4]

नागार्जुन एक प्रतिबद्ध काव्यकार के साथ एक कुशल भाषा शिल्पी और शैलीकार भी हैं। अपने काव्य की भाषा और शैली के चुनाव में वे अत्यन्त सजग और सावधान दिखाई देते हैं जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है। उन्होंने भाव के अनुरूप भाषा को अपनाया। जनता के कवि होने और जनता के सुख-दुख और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने के लिए, उनके सुख-दुख का सहभागी नोने के लिए नागार्जुन ने अपनी रचना में हिंदी प्रदेश की सर्वहारा जनता, किसान, मज़दूर एवं निम्न मध्यवर्गीय लोग की उस भाषा का उपयोग किया है, जिस भाषा का उपयोग ये लोग अपनी सामान्य रोजमर्रा की जिन्दगी और सुख –दुख में करते आए हैं। यानि कि हिन्दी-प्रदेश की आम-अवाम की भाषा का परिष्कृत रूप साहित्यिक मर्यादा के साथ नागार्जुन के यहाँ देखने को मिलता है। इन्हीं आम-अवाम जनता को ध्यान में रखकर नागार्जुन ने अपना साहित्य सृजित किया और काव्यभाषा सम्बन्धी अपने दायित्व को बखूबी पहचाना और निर्वहन भी किया। यह भाषा ठेठ जन-जीवन की भाषा है, जो जीवंत लोक-धर्म की संवाहक है। 'हरिजन गाथा' में इसका जीवंत साक्ष्य मिलता है, जब नागार्जुन चमारटोली पर कवि दृष्टि डालते हैं और उनके जीवन की विद्रूपताओं पर चोट करते हैं –

''पैदा हुआ है दस रोज पहले अपनी बिरादरी में
क्या करेगा भला आगे चलकर
राम जी के आसरे जी गया अगर
कौन -सी माटी गोड़ेगा
कौन-सा ढेला फोड़ेगा।''[5]

नागार्जुन के काव्य का जितना संवेदना पक्ष मज़बूत है, उतना ही अभिव्यक्ति पक्ष भी। उनके अभिव्यक्ति पक्ष की सबसे मज़बूत कड़ी उनकी भाषा है जो कई स्तरों पर विशिष्ट और मौलिक प्रयोगों से युक्त है। रामविलास शर्मा मानते हैं कि -''उनकी कविताएँ लोक संस्कृति के इतना नज़दीक है की इसी का एक विकसित रूप मालूम होती है।''[6]

नागार्जुन संस्कृत के विद्वान् थे और उन्होंने संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन भी किया था। इसलिए उन्हें संस्कृत भाषा तथा संवेदना का ज्ञान संस्कार रूप में प्राप्त हुआ था। नागार्जुन ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में सुगढ़ता और प्रसंगानुकूल संप्रेषणीयता लाने के लिए किया है। उन्हें किसी खास स्तर की भाषा या शैली से लगाव नहीं था , अपितु उन्होंने प्रसंग और विषयानुकूल आवश्यकता के अनुसार विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया है। संस्कृत शब्दों के प्रयोग से वे अपने मन के प्रेम, आदर और उल्लास जैसे उद्दात भावों की अभिव्यक्ति करते हैं तो उन्हीं के प्रयोग से उपहास, व्यंग्य, घृणा आदि की। संस्कृतनिष्ठ 'धरती' कविता की कुछ पंक्तिया द्रष्टव्य हैं –

''कर्षण-विकर्षण -सिंचन -परिसिंचन
वपन-तपन -सेवा -सुश्रुषा
कर-चरण -तन का सचेतन संस्पर्श
सुदुर्लभ स्वेदकण
प्रतीक्षातुर नयनों के स्निग्ध-तरल प्रेक्षण
शिष्योचित श्रद्धाभक्ति
पुत्रोचित परिचर्या
पतिसुलभ प्रीति

मात्रसुलभ ममता
पित्रसुलभ परितोषण
चाहती आई सदा से धरती।"[7]

धरती का ऐसा बिम्ब निर्माण संस्कृतनिष्ठ शब्दावली में ही सम्भव हो सकता है।

नागार्जुन की भाषा का एक मज़बूत पक्ष है- बिंब और प्रतीक योजना। "बादल को घिरते देखा है" कविता तो पूरी की पूरी बिंब-विधान में ही रची गई है। "बादल को घिरते देखा है" कविता की कुछ पंक्तियाँ नागार्जुन के भाषिक बिंब-योजना के दृष्टांत द्रष्टव्य है-

"मैंने तो भीषण जाड़ों में
नभचुम्बी कैलाश शीर्ष पर
महामेघ को झंझानिल से
गरज-गरज भिड़ते देखा है
बादल को घिरते देखा है"।।[8]

इसी प्रकार 'अकाल और उसके बाद' कविता की कुछ पंक्तियाँ उनकी भाषा-योजना और बिम्ब-प्रतीक-विधान के दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं-

"कई दिनों तक चूल्हा रोया,चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त ।।"[9]

इसी प्रकार नागार्जुन ने अपनी कविताओं में प्रतीक योजना का बहुत सहज और सुन्दर प्रयोग किया है। 'हरिजन गाथा' में कृष्णावतार के मिथकीय प्रतीक का प्रयोग किया गया है, 'बादल को घिरते देखा है' में बादल को क्रांति के प्रतीक के रूप में पेश किया गया है। इसी प्रकार 'अकाल और उसके बाद' में आंगन से ऊपर उठना, कौए का पंख खुजलाना जैसे प्रतीक प्रस्तुत किये गए हैं।

नागार्जुन मुख्यतः प्रगतिवादी, मार्क्सवादी और जनवादी विचारधारा के कवि रहे हैं, इसलिए अधिकांशतः उनकी शब्दावली प्रखर और ओजपूर्ण ही रही है, किन्तु उन्होंने अपने काव्य में कोमलकांत पदावली का भी सुन्दर प्रयोग किया है। 'बादल को घिरते देखा है' एवं 'दन्तुरित मुस्कान' आदि कविताओं में कोमलकांत पदावली कासुन्दर प्रयोग मिलता है। रूप के साथ व्यंग्य की धार अवलोकनीय है –

"मधुर-मदिर भ्रम हमें मुबारक, तुम्हें मुबारक सपने
देवि, संभालो यहाँ वहाँ नव सामंतो को अपने"[10]

डॉ. नामवरसिंह ने लिखा है –"वैसे नागार्जुन में ऊबड़-खाबड़पन भी कम नहीं है और उसके कारण कवि-कोविदों के बीच उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त होने में भी विलम्ब हुआ, किंतु भाव स्थिर होने और सुर सध जाने पर ऐसी ढली-ढलाई कविता निकली है कि बड़े से बड़े कवि को भी ईर्ष्या हो। कहना न होगा कि नागार्जुन में ऐसी कलापूर्ण कविताएँ काफ़ी है।"[11]

समग्र रूप में कहा जा सकता है कि नागार्जुन की भाषा अत्यंत सशक्त व प्रयोगधर्मी है जहाँ देशज, विदेशज से लेकर संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का खुलकर प्रयोग किया गया है। नागार्जुन ने अपनी कविताओं में बहुतायत में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया जो उनकी रचना सुंदर और उनकी भाषा को सम्प्रेषणीय और सशक्त बनाती है। उनकी रचना में प्रयुक्त कुछ प्रमुख मुहावरे हैं- खिसक जाना, मनसूबा बांधना, लोहा मानना, प्राण पखेरू उड़ जाना, डाल न गलने देना, बाँग देना, दुबक जाना, आँय बाँय बकना, दिन -दूनी रात चौगनी, चुल्लूभर पानी में डूबना, लकवा मारना, मुँह फेर लेना, वाह -वाही में पड़ना, दुधारू गाय, घोघा बसंत, खेल खतम करना, पसीना -पसीना होना, दिन में तारे दिखाना, आदि।

जनता की भाषा और संवेदना के कवि होने के कारण उनकी अभिव्यक्ति तो प्रखर है ही साथ ही उनकी काव्य भाषा में व्यंजना शक्ति भी गजब की है। अपने समय-सन्दर्भों की व्यवस्थाओं, कुरीतियों और विडम्बनाओं पर व्यंग्य करने के लिए उन्होंने अपनी बात को व्यंजना शक्ति द्वारा वक्रता के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा की व्यंजकता का यह रूप द्रष्टव्य है –

"जन -गण -मन अधिनायक जय हो, प्रजा विचित्र तुम्हारी है,
भूख -भूख चिल्लानेवाली- अशुभ- अमंगलकारी है।
बंद सेल, बेगूसराय में नौजवान दो भले मरे
जंगल नहीं है जेलों में, यमराज तुम्हारी मदद करे।"[12]

नागार्जुन की कविताओं में अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग मिलता है। अलंकारों का प्रयोग रीतिवादियों की भाँति सायास नहीं अपितु स्वाभाविक रूप से हुआ है। नागार्जुन आरंभ में चूँकि संस्कृत कविताएँ करते थे जिनमें छंद और अलंकार आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है। संस्कृत साहित्य सर्जना की यह विशेषता उनके हिन्दी साहित्य सृजन-यात्रा को भी प्रभावित करती रही है। लेकिन अलंकारों का प्रयोग अस्वाभाविक नहीं, अपितु सहज भावों की अभिव्यक्ति का एक माध्यम ही प्रतीत होती है। 'योगिराज अरविंद' कविता में कवि का व्यंग्य, अनुप्रास के प्रयोग से और अधिक प्रखर बन जाता है –

"चारु चिरंतन चटुल चमत्कृत चरम चेतना पूर्ण
धनपति, विद्यापति, वाचस्पति
सबकी इच्छा होती तुमसे पूर्ण"[13]

नागार्जुन की भाषा की विशिष्टता के सन्दर्भ में केदारनाथ सिंह लिखते हैं कि – "बाबा की भाषा की सिद्धि की प्रक्रिया जो है, उसे मैं दो तरह से देखता हूँ, एक तो लोक जीवन, लोक भाषा से उनका जुड़ाव और संस्कृत से लेकर अब तक हिंदी की जो परंपरा है, उससे उनका जुड़ाव और अनेक भारतीय भाषाओं से उनका जुड़ाव। वे बंगला जानते हैं, मराठी जानते हैं और पंजाबी जानते हैं। कई भाषाएँ जानते हैं। इन सारी भाषाओं के मूल स्रोत से वे जुड़े रहे हैं। बंगला में कविताएँ लिखी है तो इस सबसे फ़ायदा भी उठाते हैं। बहुत ही जागरूक रचनाकार हैं वे। चुपचाप सारे तत्वों को जज़्ब करते हुए…. और फिर वे एक घोल तैयार करते हैं अपने भीतर, जो उनकी रचना में ढलकर आता है। यह जो बहुत सारे तत्वों से बहुत सारे स्रोतों से उनका जुड़ाव है, यह उनकी ताक़त है और इस ताक़त का वे सार्थक इस्तेमाल करते हैं अपनी कविता में।"[14]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाबा नागार्जुन की काव्यभाषा अपने समय-सन्दर्भों और विषय वैविध्य के अनुकूल और विविधतापूर्ण है। वे जनता के कवि थे, जनकवि थे इसलिए उनकी भाषा की बनावट और बुनावट वही है जो एक आम आदमी की समस्याओं और उनके समय-सन्दर्भों को अभिव्यक्ति देने में सक्षम है। अपनी अभिव्यक्ति को धारदार और सक्षम बनाने के लिए उन्होंने अपने काव्य में सतत भाषिक प्रयोग किये हैं। इसीलिए उन्होंने अपनी भाषा के कलेवर में हर उस भाषा का प्रयोग किया, हर उस भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है जो उनकी अभिव्यक्ति को स्वर देने में सक्षम रहा है। इसीलिए उनकी काव्यभाषा आद्यांत विषय के अनुकूल और उनके भावो को अभिव्यक्ति देने में प्रखर, समर्थ और सक्षम दिखती है।

सन्दर्भ:-

1. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ सं.- 43
2. उपरिवत, पृष्ठ सं.- 44
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,श्री प्रकाशन,नई दिल्ली,नवीन संस्करण,पृष्ठ सं.-15.

4. नागार्जुन का रचना-संसार, विजय बहादुर सिंह, वाणी प्रकाशन, संस्करण-1982, पृष्ठ सं.-167.
5. नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ सं.- 138.
6. रामविलास शर्मा, नई कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृष्ठ सं.-153.
7. नागार्जुन, युगधारा, यात्री प्रकाशन, 1982, पृष्ठ सं.- 84.
8. नागार्जुन रचना संचयन, संपादक-राजेश जोशी, प्रका.- साहित्य अकादेमी,2007, पृष्ठ सं.-36
9. नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली,यात्री-प्रकाशन,कलकत्ता, 1969 ई., पृष्ठ सं.-30
10. नागार्जुन, तुमने कहा था, वाणी प्रकाशन, 1980, पृष्ठ सं.- 49
11. नामवर सिंह, कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता, राजकमल प्रकाशन, 2010, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.-178
12. अजय तिवारी, नागार्जुन की कविता, वाणी प्रकाशन, 2014, पृष्ठ सं.-115
13. नागार्जुन, हजार हजार बाहों वाली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1981, पृष्ठ सं.-19
14. केदारनाथ सिंह, नागार्जुन विचार सेतु, श्री प्रकाशन, 1996, पृष्ठ सं.- 246

• • •